समलैंगिक विवाह पर न्यायालय का औचित्य

इस लेख में हम समलैंगिक विवाह पर न्यायालय के निर्णय के औचित्य पर विचार करेंगे कि वह किन अर्थों में कितना सही-गलत रहा। इसे कुछ बिंदुओं में देखते हैं-

- याचिकाओं का मूल प्रश्न था कि क्या यौन अल्पसंख्यक जीवन और स्वतंत्रता, समानता और गैर-भेदभाव के अपने मौलिक अधिकार के अधिकारी हैं?

- याचिकाकर्ताओं की मांग थी कि विशेष विवाह अधिनियम को लिंग तटस्थ बनाया जाए। वे एक "भारतीय पारिवारिक इकाई" के रूप में धार्मिक मान्यता या सामाजिक स्वीकृति नहीं मांग रहे थे, बल्कि वे एक नागरिक के अधिकार की मांग कर रहे थे, जो उन्हें ऐसे सांसारिक अधिकार और जिम्मेदारियां दिलवा सके, जो सामान्यतः लोगों को शादी से मिल जाती है।

- ज्ञातव्य हो कि सर्वोच्च न्यायालय ने ही 2017 में निजता को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी थी। इसके अंतर्गत व्यक्ति को सहमति से अंतरंग संबंध बनाने, पारिवारिक जीवन जीने, प्रजनन और यौन झुकाव रखने के अधिकार शामिल थे।

- 2018 में न्यायालय ने समलैंगिक संबंधों को अपराध की श्रेणी से हटा दिया था। समानता और गैर-भेदभाव के अधिकार का मतलब है कि एलजीबीटी नागरिकों को भी इससे वंचित नहीं किया जाना चाहिए।

- इसके साथ ही न्यायालय को एक प्रथा या संस्कार के रूप में 'विवाह' में हस्तक्षेप करने के लिए नहीं कहा जा रहा है। विशेष विवाह अधिनियम में विवाह एक संस्कार नहीं है। यह अधिकारों और दायित्वों के साथ एक अनुबंध है। न्यायाधीशों को केवल इन अधिकारों को सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध कराना था।

न्यायाधीशों के इस तर्क पर सवाल उठाया जा सकता है कि उच्चतम न्यायालय व्यापक कानूनी ढांचा नहीं बना सकता या नीतिगत मामलों में प्रवेश नहीं कर सकता, क्योंकि यह विधायिका का क्षेत्र है। उच्चतम न्यायालय का मुख्य काम यदि संवैधानिक सिद्धांतों की पुष्टि करना है, तो इस मामले में उसने ऐसा क्यों नहीं किया? ऐसा करके वह इसे विधायिका पर छोड़ सकता था। भारत के यौन अल्पसंख्यक भी न्यायालय से यही उम्मीद रखे हुए थे। न्यायालय ने इस मामले को सरकारी समिति पर छोड़कर कुछ नागरिकों के मौलिक अधिकारों को अधर में लटका दिया है।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित संपादकीय पर आधारित। 18 अक्टूबर, 2023